ॐ

विधवा विवाह

लेखक:—

साहित्य रत्न पं० दरबारीलाल जी,

सत्यभक्त वर्धा।

प्रकाशक:—

हिरामण डोंगे, वर्धा।

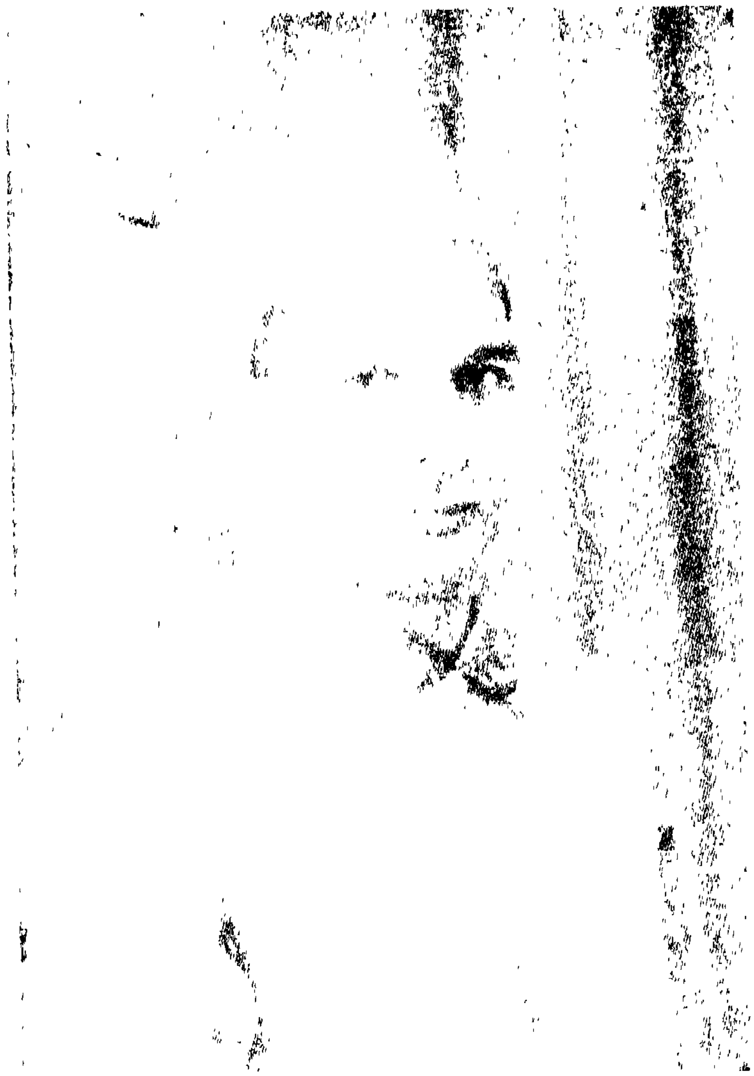
मुद्रक—

सुमतिप्रसाद जैन, आर्ट प्रेस, झांसी।

१०००]   [मूल्य ≈)

स्व० श्रीयुत विश्वम्भरदास जी गार्गीय,

झांसी।



जन्म विक्रम सं० १९४२

मृत्यु विक्रम सं० २००२

(आप ही की दी हुई दान की रकम के ब्याज से यह ट्रैक्ट छपाया गया है)

त्याग-वीर श्रीयुत विश्वम्भरदास जी गार्गीय

—० का ०—

जीवन चरित्र

श्रीयुत विश्वम्भरदास जी गार्गीय का जन्म स्थान छावनी अम्बाला है। वहां का जो बड़ा जैन मन्दिर है, वह आपके पिता जी का बनाया हुआ है, प्रारम्भ में यह उनका निजी मन्दिर था। इस मन्दिर की शान का भारत में दूसरा मन्दिर नहीं है, बीच में समव-शरण की रचना, सबसे ऊँचा शिखर और बड़ा भारी व्याख्यान भवन तथा एक ओर स्त्री सभा भवन, स्वाध्याय शाला, चारों दिशाओं में चार चैत्यालय बड़े बड़े शोभनीक हैं। यह दुमन्जिला है, नीचे की दुकानों का किराया मन्दिर के खर्च से भी अधिक आता है।

आपके पिता लाला मुसद्दीलाल जी बड़े धर्मज्ञ, विद्वान, न्यायपरायण, सभा चतुर, ओजस्वी वक्ता, परोपकारी, लब्ध प्रतिष्ठित, स्वाभिमानी एवम् प्रभाव शाली रईस थे। किसी का कोई काम हो बिना आपकी राय लिये नहीं होता था, बड़ी भारी धाक जमी हुई थी। हरचन्दराय मुसद्दीलाल के नाम से आपका फर्म विख्यात था। पिता के अनुकूल ही हमारे चरित्र नायक में सब गुण मौजूद थे। शैशव अवस्था अमीरी लाड़ प्यार में गुजरी, किन्तु होश संभालते ही गरीबी का सामना करना पड़ा। इससे आप संसार के उतार चढ़ावों की लीला से परे थे। बहुत सादगी पसन्द, गरीब परवर, देश-भक्त, परोपकारी, न्याय-नीति-निपुण, गम्भीर, सहिष्णु, परम सन्तोषी, विचार शील, स्पष्ट व्याख्याता, स्वाभिमानी, धीर, वीर, ओजस्वी वक्ता, प्रतिभा-शाली, लेखक और व्यवहार कुशल सार्वजनिक कार्यों के अनुभवी थे।

आपने बाल्यकाल से व्यापार वाणिज्य किया था इसलिये व्यापार नीति को खूब अच्छी तरह समझते थे। आपने बाल्यकाल में स्कूली शिक्षा तो इतनी प्राप्त नहीं की जितनी कि युवा अवस्था प्राप्त होने पर अपने आप अपनी योग्यता बढ़ाई। लेख लिखने का शौक होने पर अखबारी लेखों की नक़ल कर करके आप एक अच्छे मौलिक लेखक बन गये, इसमें आपने बड़ी प्रसिद्धि प्राप्त की। सन् १९०५ से १९१५ तक आपने सब प्रसिद्ध प्रसिद्ध पत्रों में लेख लिखे। सन् १९१६ में 'मुनि' मासिक पत्र व सन् १९१९ में 'जाति प्रबोधक' का बड़ी योग्यता से सम्पादन किया। इन दोनों पत्रों की अन्य पत्रों में बड़ी अच्छी समालोचना निकली। इसके बाद प्रेस के काम में व्यस्त रहने से लिखने पढ़ने का शौक मन्द पड़ गया।

सन १९०८ में आप पर बड़ा वैराग्य सवार था। समाज-सेवा की उत्कट भावना थी। एकाएक इसी वर्ष झांसी में आपकी सौदागरी दुकान में आग लग गई, एक सुई तक न बची, पांच हजार का नुकसान हो गया, जो पूंजी थी सब स्वाहा होगई। किन्तु इस धक्के से वैराग्य धारण करना उचित न समझ दो वर्ष तक और कुटुम्ब में रहे। सन १९१० में आपने समाज-सेवा के लिए घर छोड़ दिया और जैन शिक्षा प्रचारक समिति में जयपुर पहुंच गये, वहां समाज-सेवा के लिए अपने को अर्पण कर दिया एवं वर्षों तक इस संस्था के बोर्डिंग के आनरेरी सुपरिटेन्डेन्ट व समिति आफिस के सुपरिटेन्डेन्ट रहे। आप इतने परिश्रमी थे कि रात के दो दो बजे तक आफिस का काम किया करते थे। आप अपनी धुन के बड़े पक्के थे, जिस काम में लग जाते थे उसे जी जान लगा कर करते थे। यहां महात्मा भगवानदीन, ला० गेंदनलाल, कुंवरसेन शर्मा जैसे आनरेरी समाज-सेवियों का समागम हो गया, यह आपके अनन्य मित्र व सहयोगी रहे हैं। बोर्डिंग में

जिस समय आप गये थे केवल १२ विद्यार्थी थे किन्तु बोर्डिङ्ग छोड़ते समय ६० थे बोर्डिङ्ग का इतना अच्छा प्रबन्ध था कि विद्यार्थी व कार्य-कर्त्तागण बोर्डिंग के भोजन को घर से अधिक अच्छा समझते थे। ऐसी उत्तम व्यवस्था करके संस्था को छोड़ जाना सेठी जी को बहुत अखरा था। यहाँ से चलकर सन् १९११ में आप मोरेना पं० गोपालदास जी बरैया के पास पहुँचे। उस समय पं० गोपालदास जी का नाम बड़ा प्रख्यात था। वे उदार और बड़े प्रौढ्य विद्वान थे, समाज में उनका खूब नाम था। जिस समय आप मोरेना गये वहां कुल ६ विद्यार्थी स्वयं छात्र वृत्तियाँ प्राप्त करके एक अलग मकान में अपने प्रबन्ध से रहते थे। पंडित जी स्वयं व्यापार वाणिज्य करते थे और उससे दो घन्टे का समय निकाल कर पढ़ा दिया करते थे। गार्गीय जी भी वहां अपने खर्चे से रहकर पढ़ने लगे। उस समय पण्डित जी संस्था के लिए दान मांगने में लघुता और तुच्छता के भावों का अनुभव किया करते थे। पंडित जी की प्रसिद्धि के साथ साथ वहां विद्यार्थियों की संख्या वृद्धि भी होती जा रही थी इससे गार्गीय जी ने पंडित जी को बहुत समझा बुझा कर जैन सिद्धान्त पाठशाला स्थापित करने के लिए प्रेरित किया। तब पंडित जी ने यह कहकर संस्था स्थापित करने की स्वीकारता दी थी कि मैं किसी से अपील नहीं करूंगा तुम स्वयं इस कार्य को करना स्वीकार करो तो संस्था स्थापित कर सकता हूं। इसके बाद पंडित जी की संरक्षता, और गार्गीय जी के सान्निध्य में संस्था कायम होगई और उसका परिणाम यह हुआ कि पंडित जी की दान मांगने की हिचक छूट गई और संस्था बजाय पाठशाला के विद्यालय के रूप में परिणत होगई। उसका सूद का बड़ा विशाल विद्या-भवन बन गया। गार्गीय जी ने इस संस्था को उन्नत बनाने में बहुत जी तोड़

परिश्रम किया। आपकी लेखनी में बड़ा ओज था उससे प्रभावित होकर बहुत भारी सहायता आने लगी और मोरेना की संस्था उस समय की सब संस्थाओं में प्रमुख गिनी जाने लगी। यदि सच पूछा जाय तो यह सब गार्गीय जी के सतत् उद्योग का फल था। आपने ३ वर्ष तक आनरेरी मन्त्री रहकर संस्था को जो विशाल रूप दिया था; उसके बाद कोई भी उस समय जैसी स्थिति पर आज सन् १९४७ तक इस विद्यालय को नहीं ला सका। आपने ऋषभ ब्रह्मचर्याश्रम हस्तिनापुर के दौरे में और पं० गोपालदास जी के साथ प्रचारार्थ भ्रमण करके अपने ओजस्वी भाषण दिये इससे उन दिनों आपकी बड़ी ख्याति थी।

इस तरह सन् १९१० से १९१४ तक ४ साल का प्रवास गृह-त्यागी की भांति बीता, किन्तु संस्थाओं के काम के कारण आपको संस्थाओं में भी सुख शान्ति न मिली और न अध्ययन का यथेष्ट अवसर मिला, इससे आपका संस्थाओं के काम से भी दिल भर गया और यह धारणा प्रबल होती गई कि इससे तो घर पर रहना ही अच्छा था। जो आदमी न्याय और सन्तोष के साथ व्यवसाय कर सकता है, उसे कलह पूर्ण वातावरण में रहने की क्या आवश्यकता? आप पंडितों की मण्डली के मध्य में एक अकेले ही सुधार वादी थे, जैसे ३२ दांतों के बीच में जीभ। इससे हमेशा आपके साथ खट पट रहती थी। पंडित जी आपका बड़ा भारी मान करते थे, यहां तक कि आप एक प्रकार से पूर्ण रूपेण पंडित जी के (Private) प्राईवेट सेक्रेटरी थे और यह संस्कृतज्ञ पुराने विद्यार्थियों (आजकल के पंडितों) को सह्य न था। एक बार पण्डित जी से रिपोर्ट प्रकाशन की विधि पर थोड़ा मत-भेद हो गया, आपने फौरन त्याग पत्र दे दिया और झांसी वापिस आ गये, इसका पण्डित जी को महान दुःख हुआ। झांसी में आपको उन दिनों खूब राजनैतिक काम करना पड़ा, दो बार जेल

आ गये। सन् १६२० में आपने एक प्रेस "बलवन्त प्रेस" के नाम से झांसी शहर में खोला। सन् १६२८ में एक प्रेस और "आर्ट प्रेस" के नाम से सदर बाजार झाँसी में खोला और साथ में एक आदर्श स्टेशनरी की दुकान भी खोली। सन् १६२६ के अन्तिम दिन आर्ट प्रेस में आग लग गई और १२ हजार का नुकसान हो गया। स्टेशनरी की ऐसी आदर्श दूकान अन्यत्र अनुपस्थित ही है, उसे तो स्टेशनरी का प्रदर्शन गृह ही कहना चाहिये। आप तीन भाइयों में सबसे छोटे थे, आपके मझले भ्राता लाला जानीप्रसाद जी कौटुम्बिक सुख से पूर्ण सुखी हैं, उनकी लोहे के सामान की एक ऊँचे पैमाने की दुकान है।

गार्गीय जी ने श्री सोनागिर जी सिद्ध-क्षेत्र के उद्धार में बड़ा भारी उद्योग किया, इस क्षेत्र का जो उद्धार हुआ है उसके सूत्रधार आप ही थे। सन् १६०७ से इस क्षेत्र की कमेटी कायम हुई थी, उस वक्त से आप किसी न किसी रूप में उसका काम करते रहे हैं। इस कमेटी के काम में आपको बड़े कष्ट और विपत्तियों का सामना करना पड़ा था। जब जब इसके प्राणों पर आई, आपने मन्त्री बनकर उसकी रक्षा की। श्री देवगढ़ क्षेत्र को प्रसिद्धि में लाने और उसकी रक्षा के प्रथम संयोजक आप ही हैं। सन् १६१६ में अम्बाले में जो वृहत् वेदी प्रतिष्ठा हुई थी उसके आप मन्त्री थे, आपको कितने ही अधिवेशनों का संयोजक होना पड़ा था, इस विषय का आपको अच्छा अनुभव था। आप अथक परिश्रम करने वाले सार्वजनिक कार्यकर्त्ता एवम् कर्म-योगी थे।

गार्गीय जी राष्ट्रीय हलचल में काफी भाग लेते थे। सन् १६३० के आन्दोलन में आपको जेल की सजा हुई थी। इस जेल

प्रवास में आपका स्वास्थ्य बिगड़ गया जिसको सुधारने के लिए आप कई साल तक गर्मियों में पहाड़ पर जाते रहे।

आपके द्वारा कई योग्य विद्यार्थियों को मासिक वृत्ति मिलती थी और भी अनेक प्रकार से आप समयोपयोग दान दिया करते थे। मृत्यु के ८ महीने पहले आपने अपना कारोबार भतीजों के सुपुर्द कर दिया था। आपकी इच्छा थी कि शेष जीवन अधिकांशत: समाज सेवा में बितायेंगे परन्तु आपका स्वास्थ्य बिगड़ा हुआ था दिन पर दिन गिरता गया अन्त में समाज के दुर्भाग्य से ऐसा सिद्धान्त वीर, उत्साही धीर, परोपकारी, समाज सेवक ता० १५ मई सन् १९४५ को परलोक सिधार गया। अन्त समय आपने जो दान किया उसमें से विशेष उल्लेखनीय यह रकमें हैं। १०००) सनातन जैन समाज वर्धा को, ट्रैक्ट छपवा कर बांटने के लिए। इस रकम के ब्याज से यह ट्रैक्ट आपकी सेवा में बांटा जा रहा है। १०००) जैन कालेज बड़ौत को, इस रकम से एक दुकान बनवा दी गई है जिसका किराया छात्र वृत्ति देने में व्यय किया जाता है। १०००) भारतवर्षीय दिगम्बर जैन परिषद देहली को।

आपने मृत्यु के पहले ही सब प्रकार से लिखा पढ़ी करके वसीयत करके अपना सारा कारोबार और अधिकांश जायदाद व माल इत्यादि अपने दो भतीजों लाला सुमतप्रसाद व प्रकाशचन्द्र को दे दिया। यह दोनों भाई उनके प्रेस और दुकान को उसी प्रकार चला रहे हैं।

इस समय आपके कुटुम्ब में आपके बड़े भाई लाला ज्योतीप्रसाद जी हैं उनके तीन पुत्र, तीन पौत्र अथवा दो प्रपौत्र हैं। कारोबार, धन, जायदाद इत्यादि से सुखी हैं।

चिरञ्जीलाल बड़जात्या.

विधवा विवाह

विवाह संस्था के अनेक दुर्बंधनों में से एक बड़ा भारी दुर्बंधन विधवा-विवाह का निषेध है। रूढ़ियों की गुलामी के कारण मनुष्य कितना विवेक-हीन पक्षपाती, स्वार्थी और अज्ञानांध हो जाता है इसका नमूना विधवा-विवाह के निषेध में दिखाई देता है। जिन लोगों ने एक पत्नी के मरने पर दूसरे तीसरे विवाह करने में जरा भी संकोच नहीं किया वे उस बाल-विधवा का भी विवाह होने से रोकना धर्म समझते हैं। जिसने दाम्पत्य जीवन की गंध भी नहीं पाई है! वे लोग एक स्त्री से शादी करने वाले को क्षमा कर सकते हैं, शास्त्रों में हजारों पत्नियों के वर्णन को पुरुष का गौरव कह सकते है परन्तु नारी मृत-पतिका होने पर भी किसी भी हालत में दूसरा विवाह करे तो उसे सहन नहीं कर सकते। उनका हृदय इतना जड़ हो गया है कि वे यह सोच नहीं सकते कि नारी भी आखिर मनुष्य है। उसके भी हृदय है उसमें भी आकांक्षा है और उसकी बाह्य परिस्थितियाँ पुरुष की अपेक्षा इतनी असुविधाजनक हैं कि पुरुष की अपेक्षा उसे विवाह की अधिक आवश्यकता है। पुरुष के हाथ में आर्थिक-सूत्र है जिसके इशारे पर सारी सुविधाएं नाचा करती हैं फिर भी उसे एक के बाद दूसरी तीसरी आदि चाहिये कभी कभी तो एक साथ अनेक भी चाहिये। परन्तु बेचारी विधवा, जिसे प्राय: पेट भरने के लिये भी पुरुष का सहारा लेना पड़ता है रक्षण के लिये भी पुरुष का सहारा लेना पड़ता है, पूर्ण असहाय अवस्था में भी विवाह करके शान्ति-मय जीवन नहीं बिता सकती इससे बढ़कर आश्चर्य-जनक पक्षपात और क्या होगा?

जो लोग विधवा-विवाह को धर्म के विरुद्ध कहते हैं उनसे बढ़कर धर्म की विडंबना और कौन करता होगा ? धर्म, जगत में अधिक से अधिक समता का प्रसार करने के लिये है, जो उसी धर्म के नाम पर ऐसी अत्याचार-पूर्ण विषमताका समर्थन करते हैं वे खुदा के नाम पर शैतान की पूजा करते हैं। कोई भी धर्म विधवा-विवाह का विरोध नहीं कर सकता। अगर करता है तो वह धर्म नहीं कहला सकता। कोई आचार या विचार धर्म का नाम पा जाने से ही धर्म नहीं कहलाता, उसमें धर्म के वे तत्व होना चाहिये जिसके कारण धर्मों की उत्पत्ति और स्थिति होती है। अगर विधवा-विवाह समाज के लिये हितकर है तो वह धर्म-विरुद्ध नहीं हो सकता फिर भी अगर धर्म कहलाने वाला कोई मत या सम्प्रदाय इसका समर्थक नहीं है तो उस धर्म का ही दुर्भाग्य है।

हाँ, अति सर्वत्रवर्जनीय होती है। वह विधवा-विवाह में ही क्या विधुर विवाह में भी वर्जनीय है। औचित्यानौचित्यका विचार तो सब जगह होना चाहिये। परन्तु जैसे भोजन में औचित्या-नौचित्य के विचार करने का यह अर्थ नहीं है कि भोजन बिलकुल बन्द ही कर दिया जाय उसी प्रकार विधवा-विवाह में औचित्या-नौचित्य के विचार करने का यह अर्थ नहीं है कि वह बिलकुल बन्द कर दिया जाय। अन्य विषयों में जैसे मात्रा का विचार किया जाता है वैसा ही यहां करना चाहिये।

विधवा-विवाह के विरोध में कुछ बातें कही जाती हैं उन पर विचार कर लेना आवश्यक मालूम होता है। फिर उसके विषय में यह विचार किया जायगा कि वह आवश्यक क्यों है ? उसके विना क्या क्या हानियाँ हैं और उसके प्रचार के लिये क्या करना चाहिये।

१—स्त्री पुरुष में विषमता है इसलिये उन दोनों के अधिकार एक समान नहीं हो सकते।

२—विधवा-विवाह के प्रचार से सतीत्व के लिये स्थान ही न रह जायगा। भारत की एक बड़ी भारी विशेषता मारी जायगी। फिर सीता सरीखी सतियों के दर्शन ही नहीं हो सकेंगे।

३—कन्या-दान ही विवाह की परिभाषा है। विधवा-विवाह में वह नहीं आती।

४—विधवा-विवाह में पर-पुरुष-रमण और पर-स्त्री-रमण होता है इसलिये वह व्यभिचार है।

५—कामुकता अधिक होने से भी पाप है।

६—विधवा उच्छिष्ट है इसलिये वह पुरुष के काम की नहीं।

७—वैधव्य जब पाप का उदय है तब उसे भोग कर ही पाप से छूटा जा सकता है।

८—जिन जातियों में विधवा-विवाह है उनकी दुर्दशा है।

९—विधवा-विवाह से तलाक का प्रचार होगा।

१—समाधान-स्त्री पुरुष ही क्या, जगत के कोई भी दो व्यक्ति बिलकुल एक सरीखे नहीं होते, परन्तु इसलिये उनके अधिकारों में विषमता नहीं होती। देखना यह चाहिये कि जो अधिकार दिये जा रहे हैं उनका उस विषमता से कहां तक सम्बन्ध है अन्यथा विषमता के नाम पर कल कोई यह कहेगा कि स्त्रियों को पुरुषों के समान रोटी खाने का हक नहीं है सोने का हक नहीं है, आदि। स्त्री पुरुषों में जो विषमता है उसका पुनर्विवाह से कोई ताल्लुक नहीं

है। जैसे विधुर होने पर पुरुष का पुरुषत्व और काम जाग्रत रहता है उसी तरह स्त्री का स्त्रीत्व और काम जाग्रत रहता है सन्तानोत्पादन की शक्ति भी दोनों में नहिले समान रहती है। इस प्रकार आवश्यकता और योग्यता जब दोनों में समान है तब अधिकार समान क्यों न हो ?

बहुत से भोले यह कहने लगते हैं कि "स्त्री तो वर्ष में एक सन्तान ही पैदा कर सकती है जब कि पुरुष तो अनेक सन्तान पैदा कर सकता है ऐसी हालत में दोनों में समानता कैसे बट सकती है ?" परन्तु यह विषमता स्त्री पुनर्विवाह के समर्थन में ही उपयोगी है। इससे विधुर-विवाह की अपेक्षा विधवा-विवाह की अधिक आवश्यकता सिद्ध होती है। अगर कहीं सौ स्त्रियाँ और सौ पुरुष हों तो साल में सौ बच्चे पैदा होंगे। परन्तु अगर उनमें ९९ पुरुष ब्रह्मचर्य से रहें तो भी सिर्फ एक पुरुष के सम्बन्ध से १०० बच्चे पैदा हो सकेंगे परन्तु अगर उनमें से एक भी स्त्री ब्रह्मचर्य से रहे तो एक बच्चा कम हो जायगा। इसलिये सन्तानोत्पत्ति की दृष्टि से पुरुषों का ब्रह्मचर्य से रहना हानिकारक नहीं है बल्कि स्त्रियों का ब्रह्मचर्य से रहना हानिकारक है। इसलिये विवाह का विशेषाधिकार स्त्रियों को मिलना अधिक न्याय-सगत है। दूसरा कारण यह है कि सन्तान के लिये स्त्री को जितना त्याग करना पड़ता है, जितना सहन करना पड़ता है उसका शतांश भी पुरुष को नहीं करना पड़ता है तब यह कैसे हो सकता है कि जिसका त्याग और सहिष्णुता बढ़ी चढ़ी है उसे अल्प-अधिकार हों और इन गुणों में जो पीछे रहता है उसे विशेष अधिकार हों ?

एक बात और भी है कि स्त्री पुरुष की विषमता भेद के लिये नहीं अभेद के लिये है। स्त्री और पुरुष दोनों ही अपने अपने में

अधूरे मनुष्य हैं। अगर दोनों एक से होते तो दोनों सदा के लिये अधूरे होते, नपुंसक होते और होते ही नहीं, इसे विषमता न कहकर पूरकता कहना चाहिये। जब दोनों ही एक दूसरे के लिये समान पूरक हैं तब दोनों को उस पूरकता को चरितार्थ करने का अधिकार समान ही होगा।

२-विधवा-विवाह के प्रचार से सतीत्व को धक्का नहीं लगता बल्कि वह चमकता है। सतीत्व का साधारण अर्थ तो कुछ जुदा ही है परन्तु जिस लाक्षणिक अर्थ में उसका यहां प्रयोग हुआ है उस दृष्टि से भी सतीत्व का इतना ही अर्थ है कि पति के प्रति वफ़ादार रहना। जो स्त्री पति के जीवन भर पर-पुरुष को पिता पुत्र भाई के समान समझती है वह सती है। पति मरण के बाद दूसरा विवाह कर लेने से उसके सतीत्व को कोई धक्का नहीं लगता क्योंकि इसमें उसकी कोई बेईमानी नहीं है।

फिर भी जो लोग पूर्ण सतीत्व के लिये यह आवश्यक समझते हों कि उसे आजीवन दूसरा पति किसी भी हालत में करना ही नहीं चाहिये, उसे त्याग के आदर्श पर खड़ा रहना चाहिये, उनका यह सतीत्व भी तभी सम्भव है जब विधवा-विवाह का प्रचार हो। क्योंकि पुनर्विवाह का अधिकार मिले बिना उसका त्याग ही क्या? एक आदमी तभी लाख रुपये का दान कर सकता है जब उसके पास लाख रुपये हों। भिखारी आदमी लाखों का दान करने की बात करे तो उसका यह हास्यास्पद पागलपन होगा यदि समाज स्त्रियों को पुनर्विवाह का अधिकार ही न दे, पुनर्विवाह करने पर उन्हें हर तरह लांछित करे तिरस्कृत और बहिष्कृत करे और इस डर से जो स्त्रियाँ सतीत्व का दंभ करें उन्हें सती कैसे समझा जा सकता है? हां, जो स्त्रियां समाज के भय से नहीं,

किन्तु स्वेच्छा से उस सतीत्व का पालन करना चाहती हैं वे विधवा-विवाह के प्रचार होने पर भी करेंगी। उस समय उनके मनोबल की सच्ची परीक्षा होगी। जब तक अवसर ही नहीं मिला तब तक वीरता और त्याग की डींग हांकना कठिन नहीं है। उसका मूल्य शून्य के बराबर है।

कुछ भाई यह भी कह दिया करते हैं जब विधवा-विवाह का प्रचार हो जायगा तब कोई स्त्री पुनर्विवाह से क्यों चूकेगी! यदि ऐसी बात है तब तो उनके मतानुसार यही बात साबित हुई कि आज जो पुनर्विवाह नहीं करतीं उनका सतीत्व अंतरंग से नहीं है। परिस्थितिवश दिखावा मात्र है। तब ऐसे भाइयों को आजकल की स्त्रियों के उस सतीत्व के गीत न गाना चाहिये। दूसरी बात यह है कि यह मान्यता ही मिथ्या है। जिन समाजों में पुनर्विवाह प्रचलित है उनमें सैकड़ों हजारों स्त्रियां ऐसी हैं जो विवाह की योग्यता और अधिकार रखने पर भी पुनर्विवाह नहीं करतीं। वास्तव में उन्हीं को इस विषय में त्याग-शीला कहा जा सकता है।

तीसरी बात यह है कि पुनर्विवाह स्त्रियाँ कर ही लें तो इसमें हानि क्या है? पति पत्नी की ऐसी मैत्री है जिसकी तुलना में अन्य कोई भी मैत्री रक्खी नहीं जा सकती। इस प्रकार के सहयोगी मित्र का पाना बुरा नहीं कहा जा सकता। इस बात से उन लोगों को भी उत्तर मिल जायगा जो कहने लगते हैं कि 'तब तो बूढ़ी बूढ़ी स्त्रियाँ भी विवाह कर लेंगी।' यह आक्षेप अनुभवशून्यता का परिणाम है। क्योंकि जिनमें विधवा विवाह प्रचलित है उनमें भी ऐसी बात नहीं देखी जाती। फिर भी अगर कोई ऐसी वृद्धा हो जो उमर से वृद्धा हो जाने पर भी तन और मन से वृद्धा न हुई हो वह अगर अपनी उमर के अनुरूप कोई सहयोगी मित्र पाकर कुछ शान्त और निराकुल जीवन व्यतीत करे तो क्या हानि

है ! सम्भव है उनमें कामुकता न हो या सूक्ष्म हो फिर भी घर के कार्यों में परस्पर सहयोग का लाभ उठाना चाहते हों, चर्चा और विनोद में समय निकालना चाहते हों अलग अलग रहने में लोक-निन्दा का भय होने से तथा पूर्ण सहयोग में बाधा पड़ने से विवाह सूत्र में बँध जाना चाहते हों तो इसमें उनकी तथा समाज की क्या हानि है ? विवाह का अर्थ हमने काम ही क्यों समझ रक्खा है और काम का अर्थ इतना संकुचित क्यों बना रक्खा है। हर तरह का आनन्द और विनोद भी काम है वह जीवन का एक पुरुषार्थ है और दाम्पत्य जीवन में वह अधिक से अधिक मिल सकता है, कम से कम चिन्ता और कम से कम अर्थव्यय से मिल सकता है।

खैर, प्राकृत प्रश्न के उत्तर की दृष्टि से कुछ अनावश्यक सा लिख गया हूँ फिर भी सबको इतना समझ लेना चाहिये कि विधवा-विवाह के लिये ये जो सम्भावनाएँ की जाती हैं वे अनुभव के विरुद्ध हैं। अगर अपवाद रूप में कोई घटना हो भी तो हमें पुराने संस्कारों की दृष्टि से नहीं किन्तु, हिताहित विवेक की दृष्टि से विचार करना चाहिये।

प्रस्तुत प्रश्न के विषय में इतना ही कहना है कि विधवा-विवाह से सतीत्व नष्ट नहीं होता और सतीत्व की उच्च परिभाषा की जाय तो उसके मार्ग में इस विवाह से कोई बाधा उपस्थित नहीं होती बल्कि उस सतीत्व के प्रगट करने का अवसर मिलता है।

३—कन्यादान को विवाह की परिभाषा बनाना नारियों के मनुष्यत्व को छीन कर उन्हें पशु समझना है। कोई धर्म ऐसा अत्याचार नहीं कर सकता। कन्या, गाय, भैंस आदि जानवर

नहीं है कि उसका दान किया जाय। वह मनुष्य है उनका स्वतन्त्र व्यक्तित्व है। अपने विवाह के विषय में भी उसी का अन्तिम अधिकार है। विवाह में वर और कन्या का दान नहीं किया जाता परन्तु स्वेच्छा से एक दूसरे को वरण करते हैं।

कन्या शब्द के विषय में भी हमें यह ध्यान रखना चाहिये कि यहां कन्या शब्द का कुमारी अर्थ नहीं है किन्तु वही अर्थ है जो 'वर' शब्द का अर्थ है। अन्तर इतना ही है कि 'वर' शब्द पुरुष के लिए प्रयुक्त होता है और कन्या शब्द स्त्री के लिये प्रयुक्त होता है। इस लैङ्गिक भेद के सिवाय उनमें कोई अर्थ भेद नहीं है। पुरुष का चाहे पहिला विवाह हो चाहे दूसरा, विवाह के अवसर पर वर 'वर' कहलाता है इसी प्रकार स्त्री का चाहे पहिला विवाह हो चाहे दूसरा, विवाह के अवसर पर कन्या कहलाती है। जिस प्रकार वर शब्द का अर्थ दुल्हा अर्थात् Bride-groom है उसी प्रकार कन्या शब्द का अर्थ दुल्हिन अर्थात् Bride है। इस लिये विवाह के अवसर पर दुल्हिन अर्थात् कन्या है। इसलिये विधवा-विवाह में परिभाषा की बाधा उपस्थित नहीं होती।

दूसरी बात यह है कि लक्षण की अशुद्धि से लक्ष्य दोष नहीं दिया जा सकता। कोई मनुष्य की ऐसी परिभाषा बनावे जो सब मनुष्यों में न जाती हो तो इसमें उस परिभाषा बनानेवाले का दोष है, मनुष्य का दोष नहीं, उसी प्रकार अगर कोई विवाह की ऐसी परिभाषा बनावे जो विधवा-विवाह में न जाती हो तो वह उस परिभाषा का दोष है विधवा-विवाह का नहीं। इसलिये परिभाषा के नाम पर भी विधवा-विवाह का विरोध नहीं किया जा सकता।

४–विधवा-विवाह से पर पुरुष-रमण और पर स्त्री रमण होता है यह नासमझी है मैं ऐसे लोगों से पूछता हूँ कि पर-पुरुष

और पर स्त्री कहते किसे हैं ? परत्व और स्वत्व वस्तु के स्थायी धर्म तो हैं नहीं। इसलिए एक दिन जो पर है वह सदा पर ही रहे यह नहीं हो सकता।

विवाह के बिना कुमारी के साथ रमण करना भी व्यभिचार है क्योंकि जब तक विवाह नहीं हुआ तब तक कुमारी भी पर स्त्री है। परन्तु विवाह हो जाने पर वही पर स्त्री स्वस्त्री बन जाती है। ठीक यही बात विधवा के लिए है। जब तक उसके साथ विवाह नहीं हुआ तभी तक वह पर स्त्री है बाद में तो वह स्वस्त्री ही है तब व्यभिचार कैसा ? एक दिन जो पर स्त्री है वह अगर जीवन भर पर स्त्री ही बनी रहे तो समाज से विवाह संस्था और दाम्पत्य व्यवस्था ही उठ जाय क्योंकि जन्म से कोई स्वस्त्री को साथ लिये नहीं आता। उसे तो विवाह-संस्कार के द्वारा किसी स्त्री को स्वस्त्री बनाना पड़ता है।

व्यवहार में जहां जहां स्व और पर का भेद है वहां ऐसा ही करना पड़ता है। नियम है कि परधन नहीं लेना चाहिये वह चोरी है। परन्तु जब हम उसी परधन को नियमानुसार खरीद लेते हैं तो वह परधन स्वधन बन जाता है फिर उसमें चोरी का पाप नहीं लगता। विवाह के विषय में भी यही बात है।

विवाह के समय में जो प्रतिज्ञाएँ होती हैं वे भी स्वपति-सन्तोष और स्वपत्नी-सन्तोष के विषय में हैं व्यक्ति के विषय में नहीं। अगर वे प्रतिज्ञाएँ व्यक्ति विषयक हों तो विधुर विवाह भी न हो सके। पति और पत्नी में किसी एक के मर जाने पर व्यक्तिगत सम्बन्ध टूट जाता है उस हालत में विधवा स्वस्त्री न होने से कुमारी के समान पर स्त्री अवश्य है परन्तु पर की स्त्री होने से

पर स्त्री नहीं है क्योंकि अब वह 'पर' ही नहीं रहा तो उसकी स्त्री क्या ?

कुमारी जब किसी विधुर के साथ शादी करती है तो जिस प्रकार उसे पर पुरुष-रमण का पाप नहीं लगता उसी तरह विधवा के साथ शादी करने पर पर-स्त्री-रमण का पाप नहीं लग सकता ।

५—विधवा विवाह से कामुकता बढ़ती है यह कहना भी ठीक नहीं है । एक युवती विधवा दूसरा विवाह करने से कामुक कहलाये यह ठीक नहीं । सहयोगी के बदल जाने से कामुकता बढ़गई यह नहीं कहा जा सकता । एक साथ अनेक पत्नियाँ रखने में कामुकता का अधिक्य है पर किसी एक विधवा के साथ सम्बन्ध कर लेने में कामुकता का आस्तिक्य क्यों होगा ? इस प्रकार चाहे कोई प्रथम विवाहिता हो चाहे पुनर्विवाहिता हो शक्ति से अधिक काम सेवन करने से उसमें कामुकता का आधिक्य माना जायगा न कि पात्र परिवर्तन में । पात्र परिवर्तन एक बात है और कामुकता परिमाण दूसरी ।

६—धर्म के नाम पर पुरुषत्व के मद की पूजा करने वालों का यह मत है कि नारी भोज्य है और पुरुष भोजक है । अगर स्त्रियों के हाथ में सामाजिक सत्ता होती और इनमें कदाचित् स्त्रीत्व होता तो वे भी यही कह सकती थीं अर्थात् पुरुष को भोज्य कह सकती थीं ।

स्त्री को भोज्य समझने वाले भोज्य भोजक का अर्थ ही नहीं समझते । जहां भोज्य भोजक का सम्बन्ध होता है वहाँ भोज्य को आनन्द नहीं आता है । भोजन वस्त्रादि के सेवन में आनन्द हमें आता है भोजन वस्त्रादि को नहीं । परन्तु स्त्री पुरुष के विषय में यह बात नहीं है उसमें दोनों को आनन्द आता है इसलिये दोनों ही भोजक हैं । इसलिये विधवा को उच्छिष्ट कहना भूल है ।

अगर स्त्री भोज्य होती तो व्यभिचार का पाप कभी स्त्रियों को न लगता क्योंकि कर्ता तो सिर्फ पुरुष ही कहलाता। तब स्त्री कभी भी व्यभिचारिणी न बन सकती वह सिर्फ व्यभिचार्य बनती चोरी के कार्य में धन चोर नहीं कहलाता मनुष्य ही चोर कहलाता है। परन्तु पुरुष के समान स्त्री भी व्यभिचारिणी होती है उनको भी पर-पुरुष-त्याग की आवश्यकता है इस लिये उन्हें भोज्य नहीं कह सकते।

स्त्री को पुरुष के संसर्ग से आनन्द आता है। इसलिये स्त्री भोजक और पुरुष भोज्य है और पुरुष को स्त्री के संसर्ग से आनन्द आता है इसलिये पुरुष भोजक और स्त्री भोज्य है। इस-लिये दोनों ही भोज्य और दोनों ही भोजक हैं। जिस दृष्टि से भोज्य हैं उस दृष्टि से पुरुष की भोज्यता अधिक है! क्योंकि सहवास में स्त्री की अपेक्षा पुरुष को अपनी शक्ति व्यय अधिक करना पड़ती है। भोज्य भोजक में भोज्य उसे ही कहते हैं जो अपनी शक्ति का सार दूसरों को अधिक देता है। हम भोजन का सार खींचते हैं इसलिये वह भोज्य है। इस प्रकार भोज्यता अगर मानी जाय तो पुरुष की अपेक्षा स्त्री में कम है। इस प्रकार विधवा की उच्छिष्टता विधुर की उच्छिष्टता से कम ही है, अधिकता नहीं ही है।

७—वैधव्य जैसे पाप का उदय है उसी प्रकार विधुरता भी पाप का उदय है जब विधुरता का इलाज है तब वैधव्य का क्यों नहीं? और जितने दुःख हैं वे सब पाप के उदय से ही तो हैं तब क्या [illegible] दूर करने का उपाय न करना चाहिये। बीमारी गरीबी आदि सभी पाप के उदय से हैं तब क्या हम बीमारों को यों ही मरने दें उनका इलाज न करें? एकान्तदैववाद मूढ़ता

का चिन्ह है और जब उसका व्यवहार भी पक्षपात से किया जाता है तब उसमें मूढ़ता के साथ शैतानियत भी आ जाती है। दैव कुछ भी करे हमें उसकी पर्वाह न करना चाहिये। हमारे हाथ में तो पुरुषार्थ है उसी पर ध्यान रखना चाहिये। दुर्दैव किसी को विधुर या विधवा भले ही बनावे पर हमारा काम हाथ पर हाथ रखकर जड़ता का परिचय देना नहीं है किन्तु प्रयत्न करके विपत्ति को दूर हटाना है। हां यत्न करने पर भी अगर विपत्ति दूर न हो अथवा जितने समय तक दूर न हो तब तक कर्मयोगी की तरह शान्ति से सहन करना चाहिये। इस प्रकार सन्तोष और प्रयत्न दोनों का सम्मिलन होना चाहिये। विधुरों के विषय में हम इसी नीति से काम लेते हैं विधवाओं के विषय में भी हमें इसी नीति से काम लेना चाहिये।

८—विधवा-विवाह से दुर्दशा का कोई सम्बन्ध नहीं है। भारत के बाहर सब जगह विधवा-विवाह का खूब प्रचार है परन्तु इसलिये उनकी दुर्दशा है यह नहीं कहा जा सकता। पारसी, ब्रह्म समाज, आर्य-समाज आदि में विधवा-विवाह का प्रचार है परन्तु उनमें ऐसी कोई दुर्दशा नहीं है जो दूसरों में न पाई जाती हो। कृषक तथा अन्य ऐसी ही अशिक्षित मजदूर पेशा जातियों की दुर्दशा है, किन्तु उसका कारण विधवा-विवाह नहीं गरीबी है। गरीब जातियों में विधवा-विवाह का प्रचार ज्यादा है। इसका कारण गरीबों का दोष नहीं किन्तु उनकी स्त्रियों की समर्थता है। गरीब घर की स्त्री श्रीमन्त स्त्री की अपेक्षा अधिक समर्थ होती है इसलिए उसके अधिकार अधिक हैं। श्रीमन्त स्त्रियाँ प्रायः अपने हाथ से अर्थोपार्जन नहीं करतीं इसलिये वहां उनके अधिकार छिन गये हैं, उन्हें पुरुषों की गुलामी प्रेम के वश से नहीं लाचारी के वश से करना पड़ती है। गरीब जातियों की स्त्री इतनी लँगड़ी

नहीं होती। वह बहुत अंशों में अपने पैरों पर खड़ी रहती है इसलिए उसके अधिकार भी बहुत हैं वह पुनर्विवाह कर सकती है।

श्रीमन्त कहलाने वाली जातियों में अगर विधवा-विवाह नहीं है तो यह उसकी महत्ता या त्याग का परिणाम नहीं, किन्तु उन स्त्रियों की सार्वाधिक पराधीनता का परिणाम है इसका यह मतलब नहीं कि वह अच्छा या अनिवार्य है। एक आदमी अपने पास विश्वास से सोया है, इसलिए हमने उसे लूट लिया तो सोने वाले को कोई मूर्ख भले ही कहे परन्तु लूटने वाले इससे निर्दोष नहीं हो जाते इसी प्रकार दोनों के जीवन की सुविधा और शान्ति के लिये विश्वास के साथ नारी ने घर में रहना पसन्द किया इसका यह अर्थ नहीं है कि उसे लूट लिया जाय। आज अगर बड़े घरों की स्त्रियाँ लूटी हुई हैं तो यह पुरुषों का लुटेरापन है। उसको रोक देना चाहिए।

पुनर्विवाह की आवश्यक्ता जैसी गरीब स्त्री को है उसी प्रकार मध्यम श्रेणी की और अमीर स्त्री को भी है। साम्पत्तिक अधिकार न होने से वे पुनर्विवाह नहीं कर सकतीं हैं यह मनुष्यता का कलंक है। इसमें अपराध उनका नहीं समाज का है। अगर वे श्रीमन्त लोग पुनर्विवाह करने लगें तो उनकी आर्थिक दशा खराब हो जायगी। गुप्त व्यभिचार, भ्रूणहत्या आदि घोर पापों से यदि दुर्दशा नहीं होती तो विधवा-विवाह सरीखे ईमानदारी के मार्ग से कैसे हो जायगी?

६—विधवा विवाह से तलाक का डर बतलाना ऐसा ही है जैसे व्यापार करने से घाटे का डर, भोजन करने से बीमारी का डर। तलाक की प्रथा अमुक अपवादों को छोड़ कर निंदनीय है।

परन्तु उसको रोकने के लिए घर घर में वैधव्य की होली में नारियों को जलाते रहना अधिक निंदनीय है विधवा-विवाह के प्रचलित हो जाने पर भी तलाक का प्रचलित करना न करना हमारे हाथ है।

यदि कभी तलाक आदि फैला भी तो उस समय उसका इलाज किया जायगा। जब भूख के मारे प्राण निकले जा रहे हों उस समय अजीर्ण के डर से भोजन से दूर रहना उचित नहीं है हाँ सावधानी की जरूरत है सो तो सब जगह है।

ऐसी कोई प्रथा नहीं हो सकती जिसमें थोड़ी बहुत काली बाजू न हो। देखना यही चाहिये कि उससे हानि अधिक है या लाभ अधिक। विधवा-विवाह अत्यावश्यक है उससे लाभ ही अधिक है इसलिये उसका प्रचार होना चाहिए। फिर भी अगर किसी की रुचि नहीं है तो वह वैधव्य में ही प्रसन्नता से जीवन यापन करे परन्तु धर्म के नाम पर उसका विरोध करना तथा बहिष्कार आदि के द्वारा उसे रोकना मूर्खतापूर्ण अत्याचार है। विधवा-विवाह के विरोध में जो कुछ कहा जाता है वह बिलकुल निःसार है।

अब जरा इस पर विचार करना है कि विधवा-विवाह के बिना क्या हानि है और उसका प्रचार किस तरह किया जा सकता है।

विधवा-विवाह धर्म-विरुद्ध नहीं है इतना समझ लेने पर यह प्रश्न खड़ा होता है कि उसकी आवश्यकता क्या है, न किया जाय तो हानि क्या है? आवश्यकता की बात का उत्तर छोटा सा है कि विधुरों को विवाह की जो आवश्यकता है वही विधवाओं को है बल्कि अधिक है। क्योंकि विधुरों की अपेक्षा विधवाओं की

दुर्दशा, समाज में उनका गिरा हुआ स्थान ऐसा असह्य है कि उन्हें विवाह का अधिकार न देना उन्हें दम घोंट कर मार डालना है। विधवा-विवाह के बिना क्या क्या हानियाँ हैं इसके विचार से उसकी आवश्यकता का विचार हो जायगा।

कामवासना जैसी पुरुष में है वैसी स्त्री में भी है। संयम जितना पुरुष में है उतना ही स्त्री में भी। इसलिए वैवाहिक नियम जैसे पुरुष के लिए हैं वैसे ही स्त्री के लिए भी होना चाहिए। जिस उद्देश्य को लेकर या जिस आवश्यकता से विवाह-संस्था का निर्माण किया गया है उस उद्देश्य की पूर्ति विधवा-विवाह से भी होती है। विवाह न करने से जो जो हानियाँ सम्भव हैं वे विधवा विवाह से भी होती हैं। अगर विवाह संस्था न हो तो व्यभिचार फैल जायगा सो विधवा-विवाह के न होने से फैला हुआ है। इसलिए जहां विवाह की आवश्यकता है वहां विधवा विवाह की आवश्यकता है। स्त्री और पुरुष कामवासना के आवेग का अनुभव करते हैं किन्तु वे कैसे यह सोच लेते कि हैं विधवा स्त्रियों का हृदय ही नष्ट हो जाता है इसका तो परिणाम यह होता है कि घर घर में गुप्त व्यभिचार का बाजार गर्म है। समाज उन गुप्त व्यभिचारों को सहन करता है परन्तु विधवा-विवाह की आवश्यकता का अनुभव नहीं करता यह कैसी भयङ्कर जड़ता है।

कुछ लोग कहने लगते हैं कि गुप्त व्यभिचार तो विवाहितों में भी होता है इसलिए इसका विधवा-विवाह के साथ क्या सम्बन्ध यह आक्षेप ऐसा ही है कि भोजन करने वाले भी तो मरते हैं फिर भूखों को भोजन देने की क्या जरूरत? चिकित्सा कराने वाले भी तो मरते हैं फिर चिकित्सा की क्या जरूरत? विवाह व्यभिचार को रोकने की एक चिकित्सा है। चिकित्सा सौ में दस जगह

असफल भी हो जाती है इसलिए वह निन्दनीय नहीं हो जाती। यही बात विधवा-विवाह के विषय में है। ऐसे भी व्यक्ति हैं जो विवाहित होने पर भी व्यभिचारी रहते हैं ऐसे लोगों के लिये भले ही विवाह असफल या अल्पफल हो परन्तु अधिकांश व्यक्ति ऐसे नहीं होते। विवाह से उन्हें लाभ अवश्य होता है। ऐसे व्यक्तियों के लिये विधवा-विवाह सफल है। इससे व्यभिचार का पर्याप्त विरोध होता है।

विधवा-विवाह के न होने से दूसरी हानि है भ्रूण हत्या। जो कि पहिली हानि का ही फल है। समाज ने व्यक्ति के ऊपर जो एक अतथ्य विभीषिका बना रक्खी है उससे मनुष्य का कितना अधःपतन होता है उसकी तुलना कहीं न होगी। माँ का हृदय प्रेम की मूर्ति माना जाता है और वह है भी ऐसा ही। कहावत है कि पुत्र कुपुत्र हो जाय परन्तु माता कुमाता नहीं बनती परन्तु विधवा-विवाह की रुकावट से यह प्रकृति विरुद्ध घटना भी घटित होती है। लोक लाज के भय से एक माता निर्दोष शिशु को गला दबाकर मार डालती है। मनुष्य क्रूरता की सीमा पर पहुँच जाता है। आये दिन कचरा घरों में इस प्रकार के शिशुओं की लाशें पाई जाती हैं यह सब गुप्त व्यभिचार का फल है जो कि विधवा-विवाह की रुकावट से होता है। विधवा-विवाह के प्रचार से इस प्रकार की भ्रूण हत्यायें नाम शेष हो जायेंगी।

विधवा-विवाह के निरोध से तीसरी हानि है। स्त्रियों का आर्थिक कष्ट। स्त्रियों की आर्थिक दुर्दशा एक तो यों ही है फिर विधवाओं की तो बात ही क्या है! सधवावस्था में प्रत्यक्ष अधिकार न होने पर भी परोक्ष रूप में उनका पर्याप्त अधिकार होता है। इसका कारण एक तो यह है कि पति का स्वार्थ और उसका

स्वार्थ इस प्रकार मिला रहता है कि अधिकार का होना न होना कोई विशेष लाभ हानि नहीं पहुँचाता। दोनों के स्वार्थ में संघर्ष न होने से चिन्ता-जनक अवस्था नहीं आने पाती। परन्तु विधवा के लिये यह बात नहीं है। उसका प्रत्यक्ष अधिकार तो रहता नहीं है और परोक्ष अधिकार का आधारस्तम्भ गिरा हुआ होता है। दूसरा यह कि कुटुम्ब में उनकी उपयोगिता कम हो जाती है या नहीं ही रह जाती है। इसलिये वह कुटुम्ब के लिये भार के समान हो जाती है। यद्यपि उसे काफी काम करना पड़ता है फिर भी उसकी उपयोगिता का ऐसा अनुभव नहीं होता जिससे मालूम हो कि उसके बिना कुटुम्ब की गाड़ी अड़ गई है इसलिये उसकी भारभूतता बनी ही रहती है। दाम्पत्य जीवन में यह भारभूतता दूर हो जाती है, विधवा-विवाह के बाद एक उपयोगी प्राणी बन जाता है। इसलिये उसका आर्थिक कष्ट दूर हो जाता है।

विधवायें विवाह के बिना जब इस आर्थिक कष्ट के चक्कर में पड़ी रहती हैं तब उनकी घर बाहर बेइज्जती काफी होती है। यों तो बहुत से लोग वैधव्य को एक दीक्षा कहते हैं कहते व्रत हैं परन्तु इस दीक्षा या व्रत की जैसी दुर्दशा और बेइज्जती है उसकी नहीं हो सकती। धर्म के नाम पर उसे सबसे खराब खाना चाहिये सबसे अधिक काम करना चाहिए और सबका अपमान सहना चाहिए। यहां तक कि अनेक शुभावसरों पर उसे शामिल भी न होना चाहिए। विधुरों की तो ऐसी बेइज्जती नहीं होती इसका कारण यह है कि उन्हें पुनर्विवाह का अधिकार है तथा आर्थिक बल है। विधवा विवाह से नारी को ये दोनों चीजें मिल जाती हैं इससे उसकी यह बेइज्जती नष्ट प्रायः हो जाती है।

आर्थिक कष्ट और बेइज्जती का जो बुरा प्रभाव हृदय पर पड़ता है उसका एक दुष्फल यह भी है कि उससे नारी के स्वभाव

में दीनता आ जाती है वह अशक्त हो जाती है। अपनी हीनता और परमुखापेक्षिता को वह स्वाभाविक समझने लगती है वह जीते जी मुर्दा बन जाती है। उसके जीवन की सारी आशाएँ, सारे उल्लास और उत्साह पर पाला सा पड़ जाता है। इसका मूल-कारण पुनर्विवाह के अधिकार का अभाव है।

विधवा-विवाह के अभाव से एक बड़ी भारी हानि और है वह है सतीत्व का अभाव। बाह्य व्यभिचार वगैरह तो उसके प्रगट फल हैं परन्तु इसके भी पहिले जो मानसिक दुर्दशा होती है वह चिन्तनीय है। जैसे किसी के घर में खाने को न हो तो उसकी भूख कई गुणा कष्ट देगी उसके मानसिक क्षोभ को सीमातीत कर देगी उसी प्रकार पुनर्विवाह का अधिकार न होने से विधवा की मानसिक दुर्दशा होती है। जिस नारी को यह आशा रहती है कि जब आवश्यकता होगी तब विवाह कर लूंगी उसकी काम वासना प्राय: उद्दीप्त नहीं होती कि वह व्यभिचार की तरफ ले जाय। आशा होने से उसे एक प्रकार का सन्तोष रहता है और इस हालत में वह वर्षों और जीवन भर तक निकाल सकती है। परन्तु जहां पुनर्विवाह का अधिकार नहीं होता वहाँ वह निराशा के असीम गड्ढे में पड़ जाती है; उसकी वासना विस्फोट करने के उन्मुख हो जाती है। इस प्रकार उसका सतीत्व अत्यन्त संकटापन्न और प्राय: ध्वस्त हो जाता है। अगर उसमें सतीत्व हो भी तो उसकी पहिचान तो असंभव ही है। क्योंकि जहां बलात् वैधव्य है वहाँ दीक्षा का अर्थ ही नहीं रहता। वहां त्याग का पता ही नहीं लग सकता। जब वह चीज प्राप्त ही नहीं है तब उसका त्याग क्या? इस प्रकार विधवा-विवाह के अभाव में सतीत्व का होना कठिन है और उसका पहिचाना जाना तो अति कठिन है।

वृद्ध-विवाह, कन्या-विक्रय आदि कुप्रथाओं के प्रचार में सबसे बड़ी सहायता इस बलाद्वैधव्य से प्राप्त होती है। वृद्ध-विवाह में जो सबसे अधिक बुराई है वह यही है कि वृद्ध लोग छोटी उमर की कुमारियों के साथ शादी करते हैं इससे उन कुमारियों का जीवन बर्बाद हो जाता है। अगर विधवा-विवाह का प्रचार हो तो वृद्ध या व्यस्क लोग कुमारियों के साथ शादी क्यों करें? वे सम-वयस्क विधवाओं के साथ ही अपना सम्बन्ध जोड़लें। इस प्रकार वृद्ध विवाह की प्रथा बिलकुल निर्विष हो जायगी और अधिकतर उसी के साथ सम्बन्ध रखने वाली कन्या विक्रय की कुप्रथा निःशेष हो जायगी।

विधवा-विवाह न होने से जब वृद्ध लोग कुमारियों के साथ शादी कर लेते हैं तब इसका एक दुष्फल यह होता है कि बहुत से कुमारों को योग्यता रखते हुए भी विवाह से वंचित रहना पड़ता है और इस प्रकार के कौमार्य्य से जो २ दुष्फल हो सकते हैं वे सब होते हैं। इन कुमारों का जीवन या तो अत्यन्त कलुषित हो जाता है अथवा बिलकुल निराश मुर्दों के समान हो जाता है। कभी तो दोनों तरह की दुर्दशाओं का संगम भी हो जाता है। इस प्रकार के मृतःप्राय अनुत्तरदायी जीवनों की सृष्टि करना बलात् वैधव्य का अनिवार्य्य दुष्फल है।

ऊपर जो विधवा-विवाह के न होने से हानियाँ बतलाई गई हैं और कई दृष्टियों से उसकी निर्बाधता साबित की गई है। उससे इसके प्रचार की अत्यन्त आवश्यकता मालूम होती है। उसके लिए निम्न लिखित कर्तव्य आवश्यक हैं :—

पहली बात तो यह है कि बाल विधवाओं को विधवा ही न माना जाय। विवाह एक प्रतिज्ञा है और प्रतिज्ञा करने का हक किसी समझदार प्राणी को ही मिल सकता है। जिन बालिकाओं

से उनके अभिभावक कहलाने वालों ने अज्ञानकारी में ही कोई प्रतिज्ञा करादी है उसका उत्तरदायित्व उन बेचारियों पर नहीं डाला जा सकता। वे हर तरह निर्दोष हैं। विधवा-विवाह के विरोधियों को भी इन बाल विधवाओं के विवाह का हक्क नहीं छीनना चाहिए।

दूसरी बात यह है कि विधवा-विवाह कुमारी-विवाह के समान उनके अभिभावकों के द्वारा किया जाना चाहिए। इससे विधवा-विवाह की प्रथा में आने वाले दोष दूर रहेंगे। चुनाव सुन्दर होगा और सामाजिक सहयोग बना रहेगा। विधवाएँ जब व्यभिचार से भ्रष्ट हो जायें, कुटुम्बी लोग अलग करदें फिर उनका विवाह किया जायतो इस से दाम्पत्य-जीवन उचित मात्रा में सुखकर नहीं होने पाता क्योंकि इससे उचित चुनाव मुश्किल से हो पाता है।

विधवाओं को जब मालूम होगा कि उनके अभिभावक उनका विवाह करने के लिए तय्यार हैं तब उनकी प्रवृत्ति व्यभिचार की तरफ न जायगी। व्यभिचार तो एक तरह से नीति का विस्फोट है, जब मनुष्य का नैतिक मार्ग सभी तरफ से रुद्ध कर दिया जाता है तभी ऐसे विस्फोट होते हैं। विधवा-विवाह का मार्ग साफ होने पर इस प्रकार के विस्फोट की आवश्यकता ही न रह जायगी और विधवा-विवाह कुमारी विवाह के समान पवित्र बन जायगा। जिस प्रकार हम कुमार-विवाह और विधुर-विवाह के रूप में कोई अन्तर नहीं देखते दोनों को एक तरीके से करते हैं। उसी प्रकार कुमारी विवाह और विधवा-विवाह भी एक ही तरीके से करना चाहिए इससे विवाह की छाप हृदय पर गहरी बैठेगी। दंपति को वैवाहिक उत्तरदायित्व का भान अधिक होगा और दूसरे लोग भी इसमें वैवाहिक पवित्रता देखेंगे। आज-

कल जगह २ पर विधवा-विवाह प्रचार के लिए या विधवा का विवाह कराने के लिए कुछ केन्द्र बन गये हैं उनमें से दो चार केन्द्रों को छोड़ बाकी सब एक प्रकार की दुकानें हैं। दूकान की भी जीवन में उपयोगिता तो है परन्तु इस प्रकार की दूकानों से विधवा-विवाह के मार्ग में पड़े हुए रोड़े दूर नहीं हो सकते । हाँ, वर्तमान अवस्था में इस प्रकार की असहाय विधवाओं के लिए थोड़े बहुत अंशों में उपयोगिता हो सकती है। परन्तु इसको नैतिक महत्व प्राप्त नहीं हो सकता। इनमें जो एक बड़ा दोष है वह यह है कि विधवायें बाजारू सामान की तरह पैसों के आधार पर बिकने लगतीं हैं और इस प्रकार से अनमेल विवाहों की पूरी संभावना रहती है इसके अतिरिक्त कोई २ दूकानें तो व्यभिचार के अड्डे ही बन जातीं हैं फिर भी समाज जब तक विधवा-विवाह को अपना नहीं लेगी तब तक इस प्रकार की दूकानें रहें यह अनिवार्य्य है। इनको हटाने के लिए यही आवश्यक है कि विधवाओं के विवाह कुमारियों की तरह अभिभावकों द्वारा ही किये जायें। बहुत से भाई इस प्रकार दूकानों की तरफ से किये गये तथा कुछ मित्रों द्वारा किये गये विधवा-विवाहों के दोष बतला कर इस प्रथा का विरोध करते हैं परन्तु उन्हें समझ लेना चाहिए कि प्रारम्भ में इस प्रकार की त्रुटियाँ होना स्वाभाविक हैं जब तक इस प्रथा का मार्ग काफी कंटकाकीर्ण है तब तक इस प्रकार के क्षत विक्षत दिखलाई देंगे ही। भविष्य का विचार न करके उनसे डर जाना भोलापन ही है।

कभी कभी दाम्पत्य जीवन के साधारण दोष विधवा-विवाह में भी दिखाई देते हैं उनको देखकर विरोधी लोग हँसी उड़ाया करते हैं विधवा-विवाह की निरर्थकता और दुरर्थकता के गीत गाने लगते हैं उन्हें समझना चाहिए कि विधवा-विवाह भी आखिर विवाह ही है उसमें विवाह के गुण भी हैं और दोष भी।

आकस्मिक और साधारण आपत्तियां जो कुमारी विवाह में आती हैं वे विधवा-विवाह में भी आ सकती हैं उदाहरणार्थ कुमारी विवाह में भी दाम्पत्य कलह होता है सास बहू के झगड़े होते हैं और भी अन्य कौटुम्बिक झगड़े रहते हैं—कभी २ पत्नी का शीघ्र देहान्त हो जाता है—कभी पति का देहान्त हो जाता है, कभी दोनों में से किसी एक को बीमारी हो जाती है। कभी आर्थिक कष्ट बढ़ जाता है। ये सब दोष विधवा-विवाह में भी संभव हैं परन्तु पक्षान्ध लोग वे इस प्रकार कल्पित दोष देखकर एक प्रकार का असफल अन्याय ही करते हैं। एक कुमारी विवाह के बाद ही अगर विधवा हो जाती है तो इसीसे हम कुमारी विवाह का निषेध नहीं करते तो इसी प्रकार एक विधवा अगर विवाह के बाद पुनर्विधवा हो जाय तो इसी से विधवा-विवाह का विरोध नहीं किया जा सकता। इसी प्रकार अन्य दोषों के विषय में भी समझना चाहिए। इन दोषों का कारण विधवा-विवाह नहीं है किन्तु विवाह-सामान्य के मार्ग में आने वाले विघ्न हैं।

विधवा-विवाह हर तरह युक्तियुक्त और हितकर सिद्ध हो जाने पर भी यह निश्चित है कि समाज की तरफ से उसका विरोध होगा ही इस विरोध के कई कारण हैं। अधिकांश लोगों के हृदय तो मूढ़तापूर्ण रूढ़ि प्रियता के कारण इसका विरोध किया करते हैं और कुछ लोग किसी प्रकार के स्वार्थ के कारण विरोध करते हैं खास कर पंडितों या समझदार कहलाने वालों के द्वारा जो विरोध होता है उसका कारण तो सिर्फ समाज का भय अपनी रोटियों और मान-पान की रक्षा है किसी भी परिवर्तन में इस प्रकार की बाधाएँ स्वाभाविक हैं। विवेकी मनुष्य का कर्तव्य है कि समाज के दुराग्रह की अवहेलना करता रहे। समाज की तो आदत है कि प्रारम्भ में वह जिसे गाली देती है—सताती है बाद में उसकी उपेक्षा करती है और अन्त में उसे ही पूजती है। इसके लिए

आवश्यक है कि वर्तमान को संभाला जाय और इस प्रकार के विचारों को कार्यरूप में परिणत किया जाय। यह बात ध्यान में रखना चाहिए कि समाज युक्ति-शास्त्रों से इतना प्रभावित नहीं होता जितना कि रिवाज से होता है। विधवा-विवाह को युक्ति युक्त सिद्ध करने पर भी तब तक उसका विरोध होता ही रहेगा जब तक वह एक रिवाज न बन जाय इसके लिए एक के बाद एक सहयोग पूर्ण प्रभावक विधवा-विवाह होने की आवश्यकता है। समाज इनका भी विरोध तो करेगा परन्तु उसका विरोध थोड़े ही समय में धीरे धीरे इतना शिथिल हो जायगा कि उसकी तरफ किसी को ध्यान देने की भी आवश्यकता मालूम नहीं होगी।

जो लोग विधुर हैं उनको जहाँ तक हो सके वहां तक विधवा के सिवाय अन्य किसी के साथ विवाह न करना चाहिए। इस कार्य में जो बाधायें हैं उनमें बहुत सी तो ऐसी हैं जो साधारण विवाह में भी होती हैं यहां अगर थोड़ा बहुत मात्र विघ्न होगा तो उसे हटाने में देर न लगेगी। परन्तु एक बात ऐसी है जिसके लिए दृढ़ संगठन की आवश्यकता है। वह है सुधारक का बहिष्कार।

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है इसलिए सामाजिक बहिष्कार उसे बहुत दुःखप्रद होता है यद्यपि आज पुराने जमाने सरीखी न तो समाज-रचना है और न वे ग्राम पंचायतें हैं जो मनुष्य का जीना भी असम्भव कर देती थीं—अपने अत्याचारों से वे कभी की नष्ट हो चुकीं फिर भी मनुष्य किसी न किसी समाज का सदस्य बनकर ही अच्छी तरह निर्वाह कर सकता है इसके लिए आवश्यक है कि इस प्रकार के विचार रखने वाले एक ऐसा दृढ़ संगठन करलें कि जिसके बल पर कोई भी सुधारक सुधार को कार्यरूप में परिणत करने में निश्चिन्तता से आगे

बढ़ सके । जो लोग सुधारक बनने का ढोंग करते हैं और अवसर आने पर अपनी कायरता दिखलाते हैं वे लोग अपना तो कुछ लाभ नहीं उठा सकते किन्तु समाज को व्यर्थ ही नुकसान पहुँचाते हैं ऐसे लोगों को अपनी कायरता रखने का हक है परन्तु उन्हें चाहिये कि वे मिथ्यावादी और दंभी न बनें । संगठन में भी अन्य सुधारकों को इनसे सतर्क रहना चाहिये । देश में आज सुधारकों का इतना बड़ा दल पैदा हो गया है कि अगर वह संगठित हो जाय तो बड़ी बड़ी संख्या वाली अनेक उप-जातियों का अकेले ही सामना कर सकता है और थोड़े ही समय में उन सब को अपने में पचाकर एक विशाल राष्ट्र-व्यापी मनुष्यता की सृष्टि कर सकता है ।

सत्य समाज की रचना में यह एक प्रधान उद्देश्य था कि इस प्रकार के सुधारकों को पीठ बल दिया जाय । प्रारम्भिक अवस्था में होने पर भी वह इस कार्य्य में कुछ न कुछ सफल हो रहा है । धार्मिक दृष्टि से जो उदार हैं उन्हें इस संगठन में शामिल होकर हर तरह के सुधारों को निर्भयता से कार्य्य परिणत करना चाहिए । जो इस सङ्गठन में शामिल नहीं हो सकते वे भी इसके सम्पर्क में आकर इसके पीठ बल का लाभ उठा सकते हैं । जो इतने पास भी न आना चाहें उन्हें इन सुधारों के लिये अपना ही कोई सङ्गठन कर लेना चाहिये । तात्पर्य यह है कि सुधार में आगे बढ़ने वालों को सङ्गठन के अभाव से बहिष्कार का कष्ट न उठाना पड़े—कायरों के चक्कर में पड़कर उन्हें एकाकी जीवन न बिताना पड़े इस बात का ध्यान प्रत्येक सच्चे सुधारक को रखना आवश्यक है इस प्रकार के सुसङ्गठन से विधवा-विवाह की प्रथा निर्दोष बनेगी । समाज में व्यापक भी हो जायगी तथा अन्य अनेक सुधारों के लिये मार्ग-दर्शक भी होगी ।
